

सम्पादकीय

नियमसार : एक अनुशीलन

(गतांक से आगे...)

नियमसार गाथा १३५

१३४वीं गाथा में निश्चयभक्ति का स्वरूप कहा। अब इस १३५वीं गाथा में व्यवहारभक्ति का स्वरूप समझाते हैं।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

मोक्ष्रंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।

जो कुणदि परमभत्तिं व्यवहारणयेण परिकहियं ॥१३५॥

(हरिगीत)

मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की भक्ति करें गुणभेद से।

वह परमभक्ति कही है जिनसूत्र में व्यवहार से ॥१३५॥

जो जीव मोक्षगत पुरुषों का गुणभेद जानकर, उनकी भी परमभक्ति करता है; उस जीव को व्यवहारनय से परमभक्ति कही है।

उक्त गाथा का भाव टीकाकार मुनिराज श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह व्यवहारनयप्रधान सिद्धभक्ति के स्वरूप का कथन है।

जो पुराणपुरुष सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के उपायभूत कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार रत्नत्रय परिणति से भलीप्रकार आराधना करके सिद्ध हुए हैं; उनके केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर निर्वाण की परम्परा की हेतुभूत परमभक्ति जो आसन्नभव्य जीव करता है; उस मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाण भक्ति है।”

इस गाथा और उसकी टीका के भाव को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“कारणपरमात्मा के दृष्टि-ज्ञानपूर्वक उसी में स्थिर होना धर्म प्रगट करने की विधि है। इसी विधि से अभी तक अनन्त सिद्ध हुये हैं।

उन्हें पहिचान कर उनकी भक्ति करना निर्वाण की परम्परा हेतुभूत व्यवहारभक्ति है; परन्तु अन्दर में निश्चय परमात्मस्वभाव होने पर ही उसे व्यवहारभक्ति कहा जाता है।

जो आसन्नभव्य जीव ऐसी भक्ति करता है, उसके ही व्यवहार व परमार्थ दोनों

भक्ति होती हैं।^१

शुद्ध रत्नत्रय द्वारा अपने आत्मस्वभाव की परमभक्ति ही निर्वाण का साक्षात् कारण है। जबतक उस साक्षात् कारण की पूर्णता नहीं होती, तबतक सिद्धभगवान आदि की भक्ति का शुभराग आता है, उसे व्यवहार से निर्वाण का परम्परा हेतु कहा गया है। निश्चयत्नत्रय के साथ होनेवाले शुभराग को उपचार से परम्परा मोक्ष का कारण कहा है।

शुभराग वास्तव में स्वयं तो आस्रवभाव है; परन्तु उसके साथ कारणपरमात्मा का श्रद्धा-ज्ञान-आचरण होने से मोक्ष का व्यवहार कारण कहा जाता है।^२

उक्त गाथा व उसकी टीका में व्यवहारभक्ति का स्वरूप समझाते हुए मात्र यही कहा है कि निश्चयभक्ति के निर्विकल्प स्वरूप को भलीभांति समझनेवाले ज्ञानी श्रावक या छठवें-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज जब शुभोपयोग के काल में सिद्ध भगवान की भक्ति-स्तुति उनके केवलज्ञानादि गुणों के आधार पर करते हैं तो उक्त विकल्पात्मक भक्ति-स्तुति को व्यवहारभक्ति कहते हैं।

सिद्ध भगवान के गुणों को भलीभांति जानकर उनके गुणानुवाद करने को व्यवहारभक्ति कहते हैं। तात्पर्य यह है कि सिद्ध भगवान का स्वरूप भलीभांति जानकर मन में उनके गुणों का चिन्तन करना, वचन से उनका गुणगान करना और काया से नमस्कारादि करना व्यवहारभक्ति है।^{११३५}।

इसके उपरान्त टीकाकार मुनिराज श्रीपद्मप्रभमलधारिदेव छह छन्द लिखते हैं; जिनमें आरंभ के तीन छन्द इसप्रकार हैं -

(अनुष्टुभ्)

उद्धूतकर्मसंदोहान् सिद्धान् सिद्धिवधूधवान् ।
संप्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान् ॥२२१॥

(आर्या)

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता ।
निश्चयनिर्वृतिभक्ती रत्नत्रयभक्तिरित्युक्ता ॥२२२॥
निःशेषदोषदूरं केवलबोधादिशुद्धगुणनिलयं ।
शुद्धोपयोगफलमिति सिद्धत्वं प्राहुराचार्याः ॥२२३॥

(दोहा)

सिद्धवधूधव सिद्धगण नाशक कर्मसमूह ।
मुक्तिनिलयवासी गुणी वंदन करूँ सदीव ॥२२१॥
सिद्धभक्ति व्यवहार है जिनमत के अनुसार ।
नियतभक्ति है रत्नत्रय भविजन तारणहार ॥२२२॥
सब दोषों से दूर जो शुद्धगुणों का धाम ।
आत्मध्यानफल सिद्धपद सूरि कहें सुखधाम ॥२२३॥

जिन्होंने सभी कर्मों के समूह को गिरा दिया है अर्थात् नाश कर दिया है, जो मुक्तिरूपी स्त्री के पति हैं, जिन्होंने अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को प्राप्त किया है तथा जो कल्याण के धाम हैं; उन सिद्ध भगवन्तों को मैं नित्य वंदन करता हूँ।

इसप्रकार जिनवरों ने सिद्ध भगवन्तों की भक्ति को व्यवहारनय से निर्वृत्ति भक्ति या निर्वाण भक्ति कहा है और निश्चय निर्वाण भक्ति को रत्नत्रय भक्ति भी कहा है।

आचार्य भगवन्तों ने सिद्धपने को समस्त दोषों से रहित, केवल-ज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम और शुद्धोपयोग का फल कहा है।

इन छन्दों का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“ज्ञानी जीव समझता है कि वास्तव में निश्चय से तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता भी नहीं है। अतः निश्चय से तो कर्मों को आत्मा खदेड़ ही नहीं सकती, भस्म कर ही नहीं सकती; परन्तु यहाँ व्यवहारनय की प्रधानता से कथन होने के कारण ऐसा कहा है कि सिद्धों ने कर्मों को खदेड़ दिया है, भस्म कर दिया है, खिरा दिया है।

जिसप्रकार जब पक्षी अपने पंख फैलाता या समेटता है तो धूल उड़ जाती है; उसीप्रकार जब आत्मा स्वभाव में लीन होता है, तब कर्म अपने-आप खिर जाते हैं।^१

आत्मा सामान्य-विशेषात्मक है। सामान्य त्रिकाली द्रव्य पति है और उसकी विशेष परिणति ही उसकी अर्धांगिनी है। उस परिणति के बिना आत्मा कभी नहीं रहता और परिणति भी कभी आत्मा से जुदी नहीं होती। इसलिए आत्मद्रव्य की सच्ची अर्धांगिनी तो सिद्धपर्याय ही है।^२

सिद्ध भगवान कल्याण के धाम हैं; परन्तु वे कल्याण के धाम स्वयं के लिए हैं, दूसरों के लिए नहीं; ‘दूसरों के लिए कहना’ - यह तो व्यवहार है - ऐसा ज्ञानी जानते

हैं और उन्हें उसमें राग होने के कारण भक्ति का व्यवहार भी होता है।^१

यहाँ सिद्धों की विकल्पात्मक भक्ति को व्यवहार भक्ति एवं निर्विकल्प रत्नत्रय को निश्चय भक्ति कहा है।^२

पिछले श्लोक में निश्चय-व्यवहार से बात की थी और इस श्लोक में अस्ति-नास्ति से बात की है। इसमें कहा है कि सिद्ध भगवान सम्पूर्ण गुणों से सहित हैं एवं सम्पूर्ण दोषों से रहित हैं। उनके रागरहित परम वीतराग दशा प्रगट हुई है, उनके रागरहित शुद्धोपयोग है।^३

यहाँ सिद्धदशा को शुद्धोपयोग का फल बताया है।^४

उक्त छन्दों में से प्रथम छन्द में अष्टकर्मों से रहित, अष्टगुणों से मंडित, शिवरमणी के पति और कल्याण के धाम सिद्ध भगवान को भक्ति पूर्वक नमस्कार किया गया है।

दूसरे छन्द में निश्चय-व्यवहार भक्ति का स्वरूप समझाते हुए निश्चय रत्नत्रय को निश्चय निर्वाण भक्ति और सिद्ध भगवान के गुणगान को व्यवहार निर्वाण भक्ति कहा गया है।

तीसरे छन्द में सिद्धपद को शुद्धोपयोग का फल बताया गया है ॥२२१-२२३॥

इसके बाद सिद्ध भगवन्त की स्तुति करनेवाले दो छन्द प्रस्तुत किए हैं; जो इसप्रकार हैं -

(शार्दूलविक्रीडित)

ये लोकाग्रनिवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः ।
ये शुद्धात्मविभावनोद्धवमहाकैवल्यसंपद्गुणाः
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान् ॥२२४॥
त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारंगतान्
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान् ।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्
नित्यान् तान् शरणं ब्रजामि सततं पापाटवीपावकान् ॥२२५॥

(हरिगीत)

शिववधूसुखस्वान केवलसंपदा सम्पन्न जो ।
पापाटवी पावक गुणों की खान हैं जो सिद्धगण ॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १११८

२. वही, पृष्ठ १११८-१११९

३. वही, पृष्ठ ११२०

४. वही, पृष्ठ ११२०

भवक्लेश सागर पार अर लोकाग्रवासी सभी को ।
वंदन करूँ मैं नित्य पाऊँ परमपावन आचरण ॥२२४॥
ज्ञेयोदधि के पार को जो प्राप्त हैं वे सुख उदधि ।
शिववधूसुखकमलरवि स्वाधीनसुख के जलनिधि ॥
आठ कर्मों के विनाशक आठगुणमय गुणगुरु ।
लोकाग्रवासी सिद्धगण की शरण में मैं नित रहूँ ॥२२५॥

जो लोकाग्र में वास करते हैं, भव-भव के क्लेशरूपी सागर को पार को प्राप्त हुए हैं, मुक्तिरूपी स्त्री के पुष्ट स्तनों के आलिंगन से उत्पन्न सुख की खान हैं तथा शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न केवलज्ञान की सम्पत्ति के महान गुण वाले हैं; पापरूपी भयंकर वन को जलाने में अग्नि के समान उन सिद्ध भगवन्तों को प्रतिदिन नमन करता हूँ।

तीन लोक के अग्रभाग में निवास करनेवाले, गुणों में भारी, ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त, मुक्ति लक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य, स्वाधीन सुख के सागर, अष्ट गुणों को सिद्ध करनेवाले, भव तथा आठ कर्मों का नाश करनेवाले, पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि के समान, नित्य अविकारी सिद्ध भगवन्तों की मैं निरन्तर शरण लेता हूँ।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इन छन्दों के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“नम दिगम्बर भावलिंगी मुनिराज तो परम वीतरागी होते हैं। अज्ञानी जीव स्त्री के पुष्ट अवयवों का स्पर्श करके सुख मानता है; परन्तु उसमें सुख नहीं है, सुख तो सिद्धदशा में है - यह बताने के लिए अलंकार करके वीतरागी मुनिराज कहते हैं कि सिद्धदशारूपी स्त्री के पुष्ट स्तन अर्थात् पुष्टता को प्राप्त ज्ञान-दर्शन पर्याय के स्पर्श से, संवेदन से, वेदन से उत्पन्न हुए सुख का खजाना तो सिद्ध भगवान हैं।^१

२२४वें श्लोक में कहा था कि लोकाग्र में विराजमान हैं और यहाँ कहा कि तीन लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं।

तीन लोक के अग्र में विराजमान हैं - ऐसा कहकर तीन लोक की भी सिद्धि कर दी; क्योंकि तीन लोकों को नहीं माननेवाले के तो व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है।^२”

उक्त दोनों छन्दों में से प्रथम छन्द में सिद्ध भगवान को नमस्कार किया गया है और दूसरे छन्द में उन्हीं सिद्ध भगवान की शरण में जाने की भावना व्यक्त की गई है।

दोनों ही छन्दों में सिद्ध भगवान को लोकाग्रवासी और पापरूपी भयंकर अटवी

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ११२१

२. वही, पृष्ठ ११२२-११२३

को जलानेवाली अग्नि बताया गया है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही छन्दों में विविध विशेषणों के माध्यम से लगभग एक समान ही भाव प्रगट किये गये हैं।

वस्तुतः बात यह है कि निश्चय निर्वाण भक्ति से सिद्धदशा प्राप्त होती है और व्यवहार निर्वाण भक्ति में सिद्ध भगवान की मन से प्रशंसा, वचन से स्तुति और उनको काया से नमस्कारादि किये जाते हैं।।२२४-२२५॥

इसके बाद आनेवाले छन्द में भी सिद्ध भगवान की ही स्तुति की गई है। छन्द मूलतः इसप्रकार है -

(वसंततिलका)

ये मर्त्यदैवनिऋतम्बपरोक्षभक्ति-

योग्याः सदा शिवमयाः प्रवराः प्रसिद्धाः।

सिद्धाः सुसिद्धिरमणीरमणीयवक्त्र-

पंकरुहोरुमकरंदमधुव्रताः स्युः॥२२६॥

(हरिगीत)

सुसिद्धिरूपी रम्यरमणी के मधुर रमणीय मुख।

कमल के मकरंद के अलि वे सभी जो सिद्धगण॥

नरसुरगणों की भक्ति के जो योग्य शिवमय श्रेष्ठ हैं।

मैं उन सभी को परमभक्ति भाव से करता नमन॥२२६॥

जो मनुष्यों तथा देवों की परोक्ष शक्ति के योग्य है, सदा शिवमय है, श्रेष्ठ है और प्रसिद्ध है; वे सिद्ध भगवान सुसिद्धिरूपी रमणी के रमणीय मुख कमल के महा मकरन्द के भ्रमर हैं। तात्पर्य यह है कि सिद्ध भगवान अनुपम मुक्ति सुख का निरन्तर अनुभव करते हैं।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“अरहंत भगवान की भक्ति देव एवं चक्रवर्ती आदि तो प्रत्यक्ष समवशरण में करते हैं, पर सिद्धों की भक्ति परोक्ष करते हैं।”

सिद्धों का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं कि सिद्ध भगवान सदा शिवमय है, कल्याणमय है। सिद्धदशा का प्रगट होना ही शिव है, अन्य कोई शिव नहीं है।

सिद्ध भगवान श्रेष्ठ हैं, ‘परमात्मप्रकाश’ में तो ऐसा अलंकार किया कि ‘यदि

भगवान सर्वश्रेष्ठ न होते तो उन्हें लोकाग्र में कौन रखता ?’

सिद्ध भगवान प्रसिद्ध हैं; क्योंकि अनन्त सिद्ध हो गये हैं - यह बात प्रसिद्ध है, गुप्त नहीं है। स्वभाव का निर्णय कर स्वभाव में रमणतापूर्वक वीतरागता प्रगट की है - यह बात प्रसिद्ध है, प्रगट पूर्ण पर्याय प्रसिद्ध है।^१

जिसप्रकार भ्रमर फूल का रस चूसते हैं; उसीप्रकार भगवान भी स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न पूर्णदशारूपी रमणी के रमणीय मुखकमल का आनन्द रस पीने के लिए भ्रमर समान हैं। पर्याय में से आनन्द का झरना बहता है।^२

इसप्रकार सिद्ध भगवान का स्वरूप पहिचान कर जो जीव सिद्ध भगवान की भक्ति करते हैं, उनके व्यवहार से निर्वाणभक्ति होती है।^३”

उक्त छन्द में यह कहा गया है कि अरहंत भगवान की भक्ति तो मनुष्य व देवगणों द्वारा समवशरण में उपस्थित होकर प्रत्यक्ष की जा सकती है, पर सिद्ध भगवान की भक्ति तो परोक्षरूप से ही करना होती है; क्योंकि लोकाग्रवासी और अशरीरी होने से उनका दर्शन इस मध्यलोक में प्रत्यक्ष संभव नहीं है।

सदा कल्याणस्वरूप सिद्ध भगवान सर्वश्रेष्ठ तो हैं ही, सर्वजन प्रसिद्ध भी हैं तथा मुक्ति में प्राप्त होनेवाले अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं॥२२६॥

नियमसार गाथा १३६

अब इस १३६वीं गाथा में निज परमात्मा की भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।

तेण दु जीवो पावइ असहायगुणं णियप्पाणं॥१३६॥

(हरिगीत)

जो थाप निज को मुक्तिपथ भक्ति निवृत्ति की करें।

वे जीव निज असहाय गुण सम्पन्न आत्म को वरें॥१३६॥

मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को भलीभाँति स्थापित करके निर्वाण भक्ति करनेवाला जीव उस निर्वाण भक्ति से असहाय गुणवाले अपने आत्मा को प्राप्त करता है।

इस गाथा के भाव को टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह निज परमात्मा की भक्ति के स्वरूप का कथन है।

निरंजन निज परमात्मा के आनन्दरूपी अमृत को पीने के लिए अभिमुख यह जीव; भेदकल्पना निरपेक्ष निरुपचार रत्नत्रयात्मक निर्विकारी मोक्षमार्ग में, अपने आत्मा को, भले प्रकार स्थापित करके; निर्वृत्ति के अर्थात् मुक्तिरूपी स्त्री के चरण कमलों की परम भक्ति करता है; उस कारण से वह भव्य जीव भक्ति गुण द्वारा, निरावरण सहज ज्ञान गुणवाला होने से, असहाय गुणात्मक निज आत्मा को प्राप्त करता है।^१

इस गाथा और इसकी टीका के भाव को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“भक्ति दो प्रकार की होती है, एक निश्चयभक्ति और दूसरी व्यवहारभक्ति। चैतन्यस्वभाव के निर्विकल्प श्रद्धान-ज्ञानपूर्वक उसी में स्थिर होना, परमात्मा की निश्चयभक्ति है तथा ऐसी निश्चयभक्तिपूर्वक बीच-बीच में जो शुभराग आता है, वह व्यवहारभक्ति है।^१

अपने शुद्ध आत्मा का वीतरागी श्रद्धान-ज्ञान ही निश्चयभक्ति है और देव-शास्त्र-गुरु के प्रति बहुमान का भाव व्यवहारभक्ति है।^२

यहाँ पर्याय के अभिमुख होने के लिए नहीं कहा है; परन्तु पर्यायबुद्धि छोड़कर, पर्याय को त्रिकाली तत्त्व के अभिमुख करने के लिए कहा है।

जो जीव त्रिकाली स्वभाव के सन्मुख होकर गुण-गुणी भेद की कल्पना से भी निरपेक्ष होकर रत्नत्रय में आत्मा को स्थापित करता है, वह जीव मोक्ष की भक्ति करता है।^३”

इस गाथा और उसकी टीका में यही कहा गया है कि मोक्षमार्ग में आत्मा को स्थापित करना अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य को धारण करना ही निश्चय भक्ति है, निर्वृत्ति भक्ति है, निर्वाण भक्ति है। इसी निश्चय निर्वाण भक्ति से निज भगवान आत्मा की प्राप्ति होती है।।१३६।।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसी भाव का पोषक एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

(स्रग्धरा)

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्
नित्ये निर्मुक्तिहेतौ निरुपमसहजज्ञानदक्षशीलरूपे।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ११२९-११३०

२. वही, पृष्ठ ११३०

३. वही, पृष्ठ ११३१

संस्थाप्यानंदभास्वन्निरतिशयगुहं चिच्चमत्कारभक्त्या
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः।।२२७।।

(हरिगीत)

शिवहेतु निरुपम सहज दर्शन ज्ञान सम्यक् शीलमय।
अविचल त्रिकाली आत्मा में आत्मा को थाप कर॥
चिच्चमत्कारी भक्ति द्वारा आपदाओं से रहित।

घर में बसे आनन्द से शिव रमापति चिरकाल तक।।२२७।।

मुक्ति के हेतुभूत निरुपम सहज ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यरूप इस अविचलित महाशुद्ध रत्नत्रयरूप आत्मा में आत्मा को वस्तुतः भली भांति स्थापित करके यह आत्मा चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा, जिसमें से समस्त आपदायें दूर हो गई हैं तथा जो आनन्द से शोभायमान है - ऐसे सर्वश्रेष्ठ घर को प्राप्त करता है अर्थात् सिद्धरूपी स्त्री का स्वामी होता है।

इस छन्द का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं-

“सर्वप्रथम तो यह निर्णय करना चाहिये कि ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता से ही मेरा कल्याण होगा और ऐसे निर्णयपूर्वक अपने ध्रुवस्वभाव के सन्मुख होकर/ ध्रुवस्वभाव में लीन होकर अपना कल्याण करना चाहिये।

जब यह आत्मा सम्यक्प्रकार से आत्मा की भक्ति करता है; तब केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, निरुपाधिक आनन्द से सुशोभित शाश्वत घर को प्राप्त करता है अर्थात् वह मुक्तिरूपी स्त्री का स्वामी होता है।^१”

इस छन्द में मात्र यही कहा गया है कि त्रिकाली ध्रुव निज भगवान आत्मा में स्वयं के आत्मा को स्थापित करनेवाले आत्मा को इस परमभक्ति द्वारा निजघर की प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह है कि वह आत्मा मुक्तिरूपी वधू का स्वामी होता है, मोक्ष अवस्था को प्राप्त कर अनन्तकाल तक अनन्त शाश्वत सुख का उपभोग करता है।।२२७।।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ११३४

आत्मारोधक व्यक्ति के हृदय में उत्तमक्षमादि गुणों का सहज विकास होता है, अतः यह स्पष्ट है कि दशलक्षण पर्व का सम्बन्ध आत्मारोधना से है, प्रकारान्तर से उत्तमक्षमादि दश गुणों की आराधना से है।

- धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 6